बात १९८२ के शुरूआत की है । उन दिनों हम लोगों ने उस्ताद से ध्रुपद सीखना शुरू किया ही था । मन्यूर अण्णा भारत भवन के आश्रम कार्यक्रम में एक महीने के लिये भोपाल आये थे । हम लोग उनकी सेवा और उनसे सीखने के लिये भारत भवन में उनके साथ दिन रात वहीं रहते थे । अशोकजी, रश्मिजी, किरण देशपाण्डेजी , ओमप्रकाश चौरसियाजी और कालिदास सभी लोग रोज़ शाम को जुटते थे । अण्णा से बातचीत और उनका गाना रोज़ का सिलसिला था ।

हम लोग रोज़ सुबह अण्णा से सीखने के लिये बैठते थे । उन दिनों वे हमें भैरव में सादरा ' जागो ब्रजराज कुंवर , सिखा रहे थे । हम लोग अब तक संगीत में एम ए कर चुके थे और हमारा राग का सामान्य ज्ञान ठीक ठाक ही था । तालीम की शुरूआत में वे हमसे आकार में भैरव का षड़ज लगाने के लिये कहते । हम अपने पूरे मनोयोग से सा लगाने का प्रयास करते । लेकिन अण्णा हमेशा नकारते हुए कहते – ' नहीं , सा ठीक से लगाओ । , हम फिर से सा लगाने का पूरा प्रयास करते लेकिन उनका जवाब वही रहता । हम सोचते 'सा, तो ठीक ही लग रहा है, और राग शायद हम ठीक से न जानते हों लेकिन कम से कम सा तो ठीक से गा ही सकते हैं । एक विचार यह भी आया कि या तो हमें निराश किया जा रहा है या फिर अण्णा ठीक से सुन नहीं रहें हैं ।

कुछ सालों बाद उस्ताद से ध्रुपद सीखते हुए जब हम राग की गहराई में पहुँचे और एक दिन भैरव का वह षड़ज, जो अण्णा हमसे चाहते थे और हम जिससे अनभिज्ञ थे , सुनाई दिया तो सहसा उनकी बात जीवंत हो उठी । हम हतप्रभ थे और याद आया कि हम षड़ज तो लगा रहे थे लेकिन भैरव का षड़ज नहीं लगा पा रहे थे । फिर बज़ुर्गों का यह कहा भी याद आया कि हर राग का सा अलग होता है । अण्णा जिसे अपनी शैली में कहते थे कि '

'हर एक राग का सा उस राग के कपड़े पहन कर आता है '

। राग का हर एक स्वर उस राग की श्रुतियों से गुंथा और बन्धा हुआ होता है । उसी से राग की अवतारणा होती है ।

उन दिनों की अण्णा के संगीत की स्मृतियाँ आज भी गहरे कहीं मन में बैठी हुई हैं और वे जाने अनजाने 'मार्ग' दिखाती रहती हैं।